ECONSPEAK: A Journal of Advances in Management IT & Social Sciences,
Vol. 8, Issue 4, April 2018 Impact Factor 5.132 ISSN: (2231-4571)
www.skirec.org Email Id: skirec.org@gmail.com

मोहनदास नैमशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पंजरे' में अभव्यक्त दलत-जीवन-यथार्थ

डॉ. सुनीता सक्सेना
असस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी
श्यामलाल महावद्यालय (सांध्य)
दिल्ली वश्ववद्यालय

हिंदी के दलत-आत्मकथा-लेखन में मोहनदास नैमशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पंजरे' का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। यह हिंदी की आरंभक दलत आत्मकथाओं में से एक है। इसका प्रकाशन दो भागों में हुआ। इसका पहला भाग सन् 1995 में प्रकाशत हुआ और दूसरा भाग सन् 2000 में आया। यह आत्मकथा दलत-जीवन के यथार्थ को सामने लाने का काम करती है। डॉ. महीप संह ने इसके संबंध में लखा है-"मोहनदास नैमशराय की यह कृति इस अर्थ में आत्मकथा न होकर आत्मवृत्त है। उन्होंने अपने जीवन की उन तल्ख और निर्मम सच्चाइयों को इसमें उकेरा है, जिनमें मानवीय पीड़ा अपनी पूरी सघनता से व्यक्त हुई है। इसका सबसे बड़ा कारण व्यक्ति के ऊपर सड़ी-गली व्यवस्था का वह आरोपण है जिसके प्रति वह ववश होकर सब कुछ सहते जाने के लए अभशप्त रहा है।"[1]

मोहनदास नैमशराय की जन्म स्थली उत्तरप्रदेश का मेरठ शहर था। यह एक ऐसा शहर था जो समुदाय और जाति के आधार पर वभाजित था। अपनी आत्मकथा में लेखक ने इस शहर का वर्णन इन शब्दों में कया है- "मेरठ में मराठे आये और मुगल भी। फरंगी अपने साथ अपनी भाषा तथा संस्कृति का समूचा लश्कर लेकर आये। जाति और वर्गों के खानों में पहले से ही बस्तियाँ बंटी थीं। हर आने वाले हमलवार दस्ते ने उन्हें अलग-अलग नाम दिए। बस्तियों के चप्पे-चप्पे पर जातिगत नामों की छाप थी। कुछ बस्तियाँ वाड़ो और पाड़ों के नाम से जानी गयीं- जत्तीवाड़ा , पौड़ीवाड़ा, जटवाड़ा, छीपीवाड़ा, खटीकवाड़ा, ठठेरवाड़ा बनियापाड़ा आदि-आदि। गलयों पर भी कहीं-कहीं वैसी ही छाप रही। नील की गली, पत्ते वाली गली, रोहतगी वाली गली, सुनार गली, कसाइयों वाली गली। मेरे शहर के भीतर बने पुल तथा पुलयों पर भी जातियों की पहचान थी। लोद्धों वाला पुल , सैनी पुल, कसाइयों की पुलया, धीवरों का पुल.....। इससे अलग बेगम पुल, भुमया का पुल तथा खूनी पुल भी था। शहर में गेट और दरवाजे भी थे। चमार गेट, दिल्ली गेट, शोहराब गेट, कम्बोह गेट, बुढाना गेट और सराय भी, जैसे बनी सराय। हर

जाति और वर्ग के लोग अपनी-अपनी पहचान में समटे हुए। शहर धड़कता था, पर अलग-अलग स्वर में। बस्तियाँ थरकती-नाचती थीं अलग-अलग बो लयों में। उन सबसे मलकर बना यह शहर।"[2]

मोहनदास नै मशराय के पता सरकारी नौकरी में थे। माँ की ममता की छाँव से वे अल्पायु में ही वं चत हो गए थे। माँ की मृत्यु के बाद उन्हें ताई-माँ ने गोद ले लया था। उनके ताऊ चप्पल बनाने का काम कया करते हैं। ताऊ को वे 'बा' कहकर संबोधत कया करते थे। अपनी माँ का उल्लेख करते हुए उन्होंने लखा है- " मेरे जन्म के चंद बरस बाद माँ नहीं रही थी। वह राख और म ी में बदल गयी थी। उसका कतरा-कतरा जल गया था। आग में मलकर वह मुझसे , परिवार से, सारी दुनिया से अलग हो गयी थी। माँ की मृत्यु का एहसास मुझे उस समय कहाँ था भला ? होता भी कैसे? जमीन पर घिटसने वाला शशु था तब मैं। पीछे रह गया था ठूँठ-सा बाप , बिना टहनी-पत्तों का ऐसा दरख्त जिसके सीने में कोंपले नहीं खलतीं।"[3]

अपने बचपन से ही मोहनदास नै मशराय ने देखा था क कस तरह द लत वर्ग मनुवादी समाज-व्यवस्था में हा शए पर पड़ा है। वह सवर्ण वर्ग के शोषण और अपमान का शकार है। उनके बा को अपनी बस्ती के लोग सम्मान भरी नजरों से देखते थे , ले कन सवर्ण और मुसलमान उनका अनादर करते थे और अपमान भरे लहजे में उनसे बात करते थे। मुसलमान कस तरह द लतों को अपमानित करते थे , इसका वर्णन करते हुए उन्होंने लखा है- "हमारे मुसलमान पड़ोसी भी अधकांश मजदूरी पेशा करते थे। उनमें कोई सैयद , शेख, पठान न था। अधकांश जुलाहे , कसाई कलाल, अंसारी ही थे। पर उनके तेवर पठानों से कम न थे। बोलने का लहजा उसी मान सकता से प्रभा वत था। बात-बात पर हमें वे चम` कहते थे और औरतों को चम ी।"[4]

ऐसा अपमान द लत व्यक्ति के भीतर जिस व्यथा और पीड़ा को जन्म देता है उसे मोहनदास नै मशराय के इन शब्दों में देखा जा सकता है- "हम लम्बे समय से अपमान सहते आये थे, पर गुनहगार न थे हम। हारे हुए लोग थे जिन्हें आर्यों ने जीतकर हा शये पर डाल दिया था। हमारे पास अंग्रेजों के द्वारा दिये गये तमगे , मेडल, पुरस्कार न थे। हमारे पास था सर्फ कड़वा अतीत और जख्मी अनुभव। मन और शरीर पर चोट पड़ती तो वे ही जख्म हरे हो जाते। सदियों से गर्दिशों में रहते-रहते हम अपने इतिहास से कट गये थे। अपनी संस्कृति भूल गये थे। हमारे ह थयार भोथरे हो गये। पहले हम उजड़े , फर बस्तियाँ, बाद में संस्कृति। हमारी गनती गुलामों में की जाने लगी। वे मा लक बन बैठे। हमारी औरतें उनकी रखैल बनीं। हम अपनी औरतों से कटते गये। परिवार बिखरते गये।"[5]

लगभग छः वर्ष की उम्र से मोहनदास नैमशराय की शिक्षा आंरभ हुई। उनका नामांकन बैसिक प्राइमरी पाठशाला में करवाया गया इनके विद्यालय को लोग 'चमारों का स्कूल' कहा करते थे। जब ये सात वर्ष के थे तो डॉ. भीमराव अम्बेडकर का देहांत हुआ था। तब लेखक की बस्ती में एक उदासी पसर गई थी। उस समय लेखक अम्बेडकर से अनभिज्ञ थे। इसका कारण यह था कि सवर्ण वर्ग के शिक्षक और बुद्धिजीवी बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के चिंतन और विचारों को आगे नहीं ले जाना चाहते थे क्योंकि वे दलित-अस्मिता से जुड़े थे। मोहनदास नैमशराय ने इस संबंध में लिखा है- "मुझे भी बाबा साहेब के बारे में कुछ अधिक मालूम न था। स्कूल में गांधी, नेहरू के बारे में कई बार सुना था अध्यापक बाबा साहेब का जिक्र तक न करते थे। "[6] दलित जातियाँ किस तरह से सवर्ण जातियों की उपेक्षा और घृणा की शिकार है, इसको दर्शाने वाली कई घटनाओं की चर्चा मोहनदास नैमशराय ने अपनी आत्मकथा में की है। ऐसी ही एक घटना है जब वे अपनी बहन को उसकी ससुराल से लाने के लिये अपने बड़े भाई के साथ जा रहे थे। रास्ते में लेखक को प्यास लग गई। ऐसे में वे एक घर के सामने दो वृद्ध व्यक्तियों को खड़े देखकर रूके और उनसे पीने के लिए पानी माँगा। उन दोनों बुजुर्गों को जब यह पता चला कि दोनों भाई दलित जाति के हैं तो उन्होंने पानी देने से मना कर दिया- "म्हारे घर चमारों की खात्तर पानी ना है।... आगे झोड़ है , वई मल जागा पानी-वानी तमै " हमारी तरफ हिकारत से देखते हुए कहा था उन्होंने।"[7] ऐसे में अपनी प्यास बुझाने के लिए लेखक को मजबूरन जोहड़ का पानी पीना पड़ा था जो गंदगी और बदबू से भरा था।

शिक्षा का महत्त्व यूँ तो हर व्यक्ति के जीवन में होता है किंतु दलित जाति के लिए शिक्षा उनकी मुक्ति का साधन है जो उन्हें यंत्रणापूर्ण जीवन से सुनहरे भविष्य की ओर ले जा सकती है। किंतु मोहनदास नैमशराय को इस शिक्षा प्राप्ति के लिए भी बहुत संघर्ष करना पड़ा। उनके विद्यालय में ज्यादातर अध्यापक जाति से सवर्ण थे। वे दलित बच्चों को अपमानित करने के लिए उन पर व्यंग्य करते और पिटायी करने से भी पीछे नहीं हटते थे। किंतु दलित शिक्षा के महत्त्व को जानने लगे थे। लेखक लिखते हैं-"लोग स्कूल को शिक्षा का सूरज मानते थे। बस्ती में जैसे-जेसे सूरज उगेगा वैसे-वैसे अशिक्षा के साथ कुरीतियाँ तथा कुप्रथाएँ दूर होंगी। बस्ती के लोग अपने बच्चों को पढ़ाने-लिखाने में रुचि लेने लगे थे।"[8]

आत्मकथाकार को शिक्षा से वंचित करने के लिए कई तरह की कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी जाती थी। लेखक का परिवार चप्पलों के निर्माण से संबंधित काम करता था किंतु लेखक द्वारा एक बनिये को जब यह कहा गया कि कल उसकी परीक्षा होने के कारण वह उनका चप्पल ठीक नहीं कर पाएंगे तो बनिये को बुरा लग गया और बोला-"अरे पढ़-लिखकर क्या तू लाट-गवन्नर बन जागा। गांठेगा तो येई लीतेर।"[9] सवर्ण जाति द्वारा कही गयी ये पंक्तियां दलितों के प्रति सदियों से जो कड़वाहट है उसे प्रकट करती है।

आत्मकथाकार के जीवन को जिन मनोभावों ने वक सत कया उनमें उज्ज्वल पक्ष उनके बा का स्नेह, उनकी दोस्ती एवं भाई-बहन से जो प्यार उन्हें मला तथा स्याह पक्ष उनके पता का अर्थाभाव की स्थिति में भी शराब पीना, जुआ खेलना और उनकी नई माँ का उनके प्रति रूखा व्यवहार है। वह अपने परिवार का वर्णन भी करते हैं जिससे उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को समझने में मदद मलती है। लेखक का बड़ा भाई अपने पति रूपी दायित्व का निर्वहन करने में सफल नहीं हो पाए जिस कारण भाभी अपने मायके से लौटकर कभी नहीं आयी। लेखक का मन अपनी भाभी के लए काफी दुखी हुआ था। लेखक अपने आस-पास होने वाले आ र्थक शोषण को अनदेखा नहीं करते हैं-"इतनी मेहनत से बा चप्पल बनाता था। फर भी वे उसमें कोई-न-कोई कमी निकाल देते थे। असल में क मयाँ निकालने का कारण भी होता था। चप्पलों में दो-चार क मयाँ निकालकर वे दाम कम कर देते थे। एक बार घर से टोकरा भरकर माल ले गये तो उसे वापस न लाते थे। भले ही कम पैसे मलें। जैसे-तैसे भाव पर माल बेच दिया जाता था।"[10]

लेखक के बचपन की एक मधुर स्मृति के रूप में वह रसवंती का उल्लेख करते हैं। उसके आने पर लेखक को अपने भीतर प्रेम की प्रथम अनुभूति सी होती है। वह उसके वषय में लखते हैं-"वह बहुत सुन्दर न थी पर उसके नयन-नक्श तीखे जरूर थे। उसकी मोटी-मोटी आँखे मुझे झील जैसी लगती थीं। गेहुँआ रंग, मध्यम आकार का शरीर। वह अ धकतर सलवार-कमीज़ पहना करती थी। उसके शरीर के व भन्न अंगों में अभी मादकता न आ पायी थी। जैसे-जैसे वह जवान हो रही थी, वैसे-वैसे उसके शरीर में भराव होने लगा था। अंगों में कसावट होने लगी थी।"[11]

लेखक की इस आत्मकथा में उनका परिवेश अपने यथार्थ रूप में प्रकट हुआ है। डॉ. अम्बेडकर की मृत्यु से बस्ती में उत्पन्न हुए वातावरण को लेखक सजीव रूप में अं कत करता है-"बा ने कहा था- बाबा साहब की मौत हो गयी है। शोर नहीं करना है। कसी के मर जाने पर शोर नहीं करते, खेलते नहीं, इसका मुझे उसी दिन पता चला था। सूने लोगों की ओर देखते-देखते मेरी आँखे सूनी हो गयी थीं। थोड़ी देर के लए मैं सहम गया था। ऊपर नीम था, उसके पत्ते थे जो हिल-डुल न रहे। परिवेश में हवा न थी। केवल सन्नाटा था। कसी को वह सन्नाटा तोड़ने की सुध न थी।"[12]

लेखक द्वारा वातावरण के यथार्थ चत्रण की क्षमता हम उनके द्वारा उनके परिवार के साथ गंगा मेला यात्रा के संदर्भ से देख सकते हैं जहाँ वह लखते हैं-"एक घण्टे बाद हमने फर अपनी-अपनी गा ड़यों में बैठकर यात्रा आरम्भ की। बीच में अनेक गाँव, नदी, नाले, बम्बे, जोहड़, पुल पार करने पड़े। कहीं-कहीं ऊबड़-खाबड़ रास्ता भी था। अब तक हमारे का फले में और गा ड़याँ जुड़ गयी थीं। धीरे-धीरे यह का फला लम्बा होता जा रहा था। साथ ही बैलों के गले में पड़ी घण्टियों, घुँघरुओं की आवाजें भी बढ़ती जा रही थीं। अचानक द क्षणी छोर से कुछ औरतों ने गीत गाना शुरू कया। माँ के साथ बस्ती की अन्य औरतों ने भी अपने गीत आरम्भ कये।"[13]

सामान्य जन के लए प्रकृति प्रेम, उल्लास एवं उत्साह के रूप में नज़र आती है कंतु वहीं प्रकृति आत्मकथाकार के जीवन में समस्या बन जाती है। उनकी बस्ती की हालत बारिश में इतनी खराब हो जाती थी क वहाँ जीना भी दूभर हो जाता था। यह लेखक की आ थक एवं सामाजिक स्थिति को दर्शाता है क कस प्रकार उन्हें इस तरह की दयनीय स्थिति में जीने को ववश होना पड़ता था-"बच्चे बाहर खेलना भूल गये। सड़क पर पानी था। ग लयाँ तक पानी से भर गयी थीं। हमारी बक्खल में भी पानी आ गया था। एक-एक घर धीरे-धीरे तालाब बनने लगे थे। चूल्हे ठंडे थे। वे पानी में डूब गये थे। आज सुबह से ही कसी ने कुछ खाया-पीया न था। रात से ही पानी भरना शुरू हो गया था। बाहर-भीतर पानी था। और पानी में सब कुछ मल गया था। पखाना इधर-उधर तैरने लगा था। तेज बदबू के मारे अजीब हाल था। दुकान में तख्त पर मैं, भइया, भाभी, ताई माँ और भाभी सकुड़े बैठे थे। घरों में बिछी चारपाइयाँ तक डूबने लगी थी।"[14]

कसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के वकास में बचपन की घटनाओं से पड़े प्रभाव का बहुत महत्त्व होता है। लेखक के नास्तिक बनने का कारण धर्म के नाम पर बचपन में ही होने वाला भेदभाव है। भगवान सभी के लए समान हैं कंतु द लतों को मंदिर में प्रवेश करने के लए संघर्ष क्यों करना होता है, यह प्रश्न सभी द लत चंतकों के मन में कभी-न-कभी जरूर आया होगा। लेखक द्वारा प्रसाद लेने के क्रम में पुजारी की अंगुली के स्पर्श होने पर जो घटना हुई इससे धा र्मक भेदभाव की गहनता को समझा जा सकता है-"तू चमार का है न। सब कुछ भरस्ट कर दिया। कतनी बार कहा तु ढोरों से, प्रसाद दूर से लया करो।' ' ..."थू, तुम्हारा मंदिर और तुम्हारा प्रसाद...।" कहकर मैं चला आया था। उस दिन के बाद मैं मंदिर नहीं गया था। मंदिर मुझसे मीलों दूर हो गया था। जैसे मंदिर के भीतर रखे पत्थर के देवताओं के प्रति नफरत-सी हो गयी थी। शायद यहीं से मेरे भीतर कोई नास्तिक पुरुष आकर बैठ गया था।"[15]

इस प्रकार मोहनदास नै मशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पंजरे' द लत-जीवन-यथार्थ को उसके उन तमाम वद्रूपताओं के साथ सामने लाने का काम करती है जो ब्राह्मणवादी समाज-व्यवस्था की देन हैं। द लत समाज को हा शए पर रखनेवाली, उसका शोषण करनेवाली, उसे मानवीय अ धकारों से अपदस्थ करनेवाली सवर्ण समाज की मान सकता और उसके व्यवहार एवं चरित्र को यह आत्मकथा पूरी यथार्थता के साथ अनावृत्त कर देती है।

संदर्भ:-

1. भू मका, अपने-अपने पंजरे
2. अपने-अपने पंजरे , पृ. 12
3. वही, पृ. **13**
4. वही, पृ. **18**
5. वही, पृ. **18**
6. वही, पृ. **41**
7. वही, पृ. **68**
8. वही, पृ. **169**
9. वही, पृ. **77**
10. वही, पृ. **80**
11. वही, पृ. **112**
12. वही, पृ. **41**
13. वही, पृ. **64**
14. वही, पृ. **85**
15. वही, पृ. **31**